



## कबीर की भक्ति में ज्ञान, योग और प्रेम का समन्वय



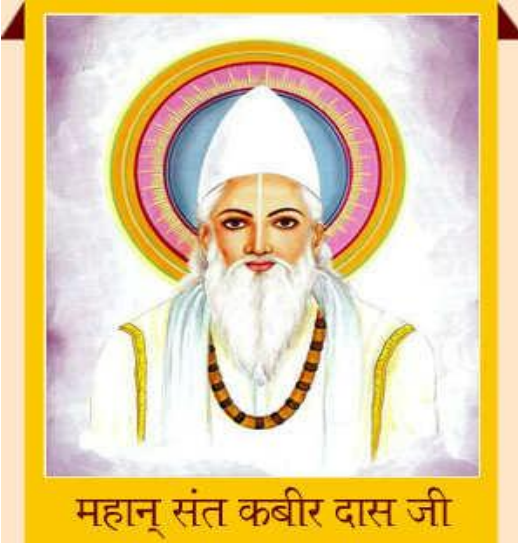
मोहन सिंह

प्रवक्ता - हिन्दी, रा. इ. त. नारायण-नरि सिनाई, जिला - चमोली गढ़वाल, उत्तराखण्ड.

### सारांश :

कबीर दास निरं ब्रह्म उपासक थे। इस ब्रह्म का साक्षाकार ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश पुंज में ही संभव है, जिसके प्रति आत्मा का भाव उमड़ रहा है, वह यदि आडम्बरों, गिथ्याचारों और सन्नदाय की दीपवारों में द है, तो उसका प्रत्यक्षीकरण कैरो संभव है। भगवान को सीमाओं में बाँधने वाले व्यक्ति को क्या पता कि ईश्वर का सतस्वरूप उसकी अनुभूति से परे हो गया है कबीरदास जी इन सभी सीमाओं को तोड़कर ब्रह्म को अपनी अन्तरात्मा में अनुभूत करना चाहते थे। कबीर जिस युग में भक्ति साधना में प्रवृत्त हुए, उस युग में तत्व-चिन्तन तथा योगसाधना की सशक्त परम्परा मौजूद थी। शंकर ने अपने वेदान दर्शन में ब्रह्म और जीव की एकता का जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया उसमें भारतीय दार्शनिकों के लिए भक्तिवाद के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। अतः शंकर के अद्वैतवाद के आंशिक

संशोधन के लिए परवर्ती दार्शनिक रामानुज, रामानन्द, मध्याचार्य निम्बार्क स्वामी आदि के बहुत ही गूढ चिन्तन और विवेचन के बाद विभिन्न दार्शनिक पद्धतियों और मान्यताओं की स्थापना की सबका निष्कर्ष शंकर ज्ञान और तर्क्यादी अद्वैत को आगे बढ़ाकर भक्तिवाद साथ संगति स्थापित करने का था। शुद्ध द्वैतवाद, विशिष्ट द्वैतवाद, द्वैताद्वैत वाद आदि नामों से विभिन्न मार्गों का अनुसरण करते भक्तिवाद की संगति बिटाने का कार्य किया। जिनो कबीरदास जी की भक्ति भावन में ज्ञान योग और प्रेम का समन्वय मिलता है।



### कबीर की भक्ति में ज्ञान, योग और प्रेम का समन्वय

रामानुजाचार्य का गत भक्तिशब्दस्य प्रीतिविशेषे वर्तते प्रीतिश्च ज्ञान विशेष एवं भगवान के प्रति प्रेम ज्ञान से भिन्न है। यह तो ज्ञान ही पराकाष्ठा है। चित्त में विशुद्ध ज्ञान होने पर ही संसार में विष और परमात्मा के प्रति आकर्षण सम्भव होता है। रामानुज ज्ञान ही ध्यान, उपासना या भक्ति ही मानते हैं। कबीर की वाणी में भी ज्ञान ही स्थिति लगभग ऐसी ही है। वह भक्ति से बहुत अलग नहीं है।

यह गहन अध्यात्मिक अनुभूति का पर्याय है। दार्शनिकों द्वारा मथित दार्शनिक तत्व चिन्तन और खंडन - मंडन से निरूपित ज्ञान कबीर को स्वीकार नहीं है। संभवत इस तरह का ज्ञान इनकी क्षमता वेद - पुराण, स्मृति आदि साधनों से ईश्वर की प्रति को जानना संभव नहीं है।

जप नहीं तप नाही, जोग ध्यान नहीं पूजा ।  
सिव नाही, सकती नाही, देव नाही दूजा ॥  
रुग न जुग, न स्यामं अथरवन, वेद नहीं व्याकरना ।  
तेरी गति तू ही जागै, कबीरा तो सरनां ॥

कबीर द्वारा प्रतिपादित ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान से अलग है। इन्होंने पुस्तकीय ज्ञान का बारबार खंडन किया है इ

कबीर पढिया दूर करि, पुस्तक देइ बहाइ ।  
बावन आषर संधि करि रैइ मनै चित लाइ ॥

कबीर सदैव सामान्य जनों के पक्षधर रहे । उनकी यह पक्षधरता उनके भक्ति सिद्धांत में भी प्रतिकलित है । उन्हें ऐसा लगता था कि शास्त्र आदमी को जड़ बनाता है । उसमें जो सूक्ष्म विवेचन तथा विश्लेषण होता है । वह साधारण जनों के लिए बोधवाक्य नहीं होता है । बहुत सी धार्मिक पुस्तकें कर्म - पाण्डों के विवेचन तक अपने को सीमित रखती हैं । अतएव भक्ति की साधना में इनकी उपादेयता बहुत कम रह जाती है । यदि भक्ति का आवश्यकता से अधिक दार्शनिकता, तत्व चिन्तकों और कर्मकाण्डियों की संवसुलभता समाप्त हो जायेगी । योग के चमत्कारों तथा आडम्बरों के पीछे भागने वाली जनता के लिए यह भी खतरा था कि वह अज्ञान की ज्ञान मानकर उसी के प्रति पूर्ण श्रद्धालू न बन बैठे । इसलिए तो सत्गुरु का प्रबोधन आवश्यक है । जब तक गुरु के द्वारा ज्ञान का दीपक प्राप्त नहीं होगा तब तक लोक ओर वेद के पीछे अन्धी दौड़ समाप्त नहीं होगी ।

ज्ञान को प्रकाशित करने वाला गुरु भी ईश्वर की कृपा से ही मिलता है ।

कबीर ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ ।  
जब गोब्यंद कृपा करी, तब गुरु मिलिया आइ ॥

गुरु के इस प्रबोधन से राम के भजन में भक्त निर्भीक और निःशंक भाव से प्रवृत्त होता है । सारे संसार को संशय में लाये जा रहा है । गुरु के उपदेशों से विध्वंसित शिष्य संशयों को चुन-चुनकर खा जाता है । ज्ञान के अभाव में भी तो संसारी जीव विषय-वासनाओं में पतिंगे की तरह टूट पड़ रहा है । इस भयानक समस्या से गुरु - ज्ञान के बाबजूद एकाध शिष्य ही बच पाता है । कबीर इन्हीं विरले शिष्यों में से हैं जिन्होंने अपने ज्ञान के बल पर अनेक आडम्बरों का खंडन किया, अनेक विरोधियों का डटकर सामना किया । कबीर के अन्तर में स्वानुभूतिजन्य ज्ञान का प्रखर आलोक एकाएक फूट पड़ता है । सद्गुरु का शब्दबाण लगते ही बैचेनी आ जाती है अनन्त लोचन उनके गन में उन्मीलित हो जाते हैं । यही ही नहीं ज्ञान तूफान की तरह आता है । जिसके प्रभाव से भ्रम की नींद उड़ जाती है । माया के बंधन शिथिल हो जाते हैं, तृष्णा समाप्त हो जाती है, ज्ञान की आँधी के बाद प्रेम की वर्षा होती है जिससे भक्त भीग जाता है । ज्ञानरूपी सूर्य के उदित होने पर सारे विश्व की प्रखर पहचान हो जाती है । ज्ञान, प्रेम और स्वानुभूति के समन्वित रूप को व्यक्त करने वाला कबीर का यह पद द्रष्टव्य है ।

संतो भाई आई ग्यान की आंधी रे ।  
भ्रम की टाटी सबै उडाणी, माया रहै न बांधी ॥  
आँधी पीछे जो जल बूढा, प्रेम हरी जन भीना ।  
कबीर भान के प्रगटे, उदित भया तम पीना ॥

उसमें वह अज्ञानमूलक उत्साह नहीं है, जिसमें आत्म-त्याग न होकर निरीह एवं निर्दोष को मौत के घाट उतार दिया जाय । उपकी भक्ति का अनुसरण तभी संभव है जब सद-असद् विचार का ज्ञान हो, संसार का माया- मोह, कामिनी चिन्तन तथा भोग के प्रति दौड़ने वाले मन पर नियंत्रण हो, गुरु के चरणों में आस्था हो, महान त्याग की तत्परता हो, मन-मन में पूर्ण श्रद्धा और आस्था हो, कर्म करते हुए भी फल से निर्लिप्ति हो । इसका एक मजबूत शास्त्रीय आधार भी है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'कबीर की भक्ति वह लता है जो योग के क्षेत्र में प्रेम का बीज पड़ने से अंकुरित हुई है और जिसका विकास स्वानुभूति का अवलम्बन पाकर हुआ है ।'

भारतीय दर्शन में योग का बड़ा महत्त्व रहा है । वैदिक साहित्य से लेकर गीता तक में योग के अर्थ और अभिप्राय में विस्तार परिलक्षित होता है । इसके अर्थ विस्तार का ही परिणाम था कि आत्मा और परमात्मा से तादात्म्य स्थापित करने वाली किसी भी साधना को योग कहा जाने लगा । योग वास्तव में ऐसा विज्ञान है जिससे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की शक्तियों का विकास किया जा सकता है । योग की जितनी दार्शनिक या आध्यात्मिक महत्ता है उससे कम व्यावहारिक महत्ता नहीं है । स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन के बिना किसी भी तरह की साधना संभव नहीं है । इसीलिए योग का महत्त्व को प्रायः सभी साधनाओं ने स्वीकृति मिली है ।

कबीर दास जी के समय में सिद्धों और नाथों की साधनाओं में योग की बड़ी धूम थी । लेकिन इसका इतना चामत्कारिक एवं अतिरंजित प्रचार-प्रसार किया गया कि जनसाधारण के बीच में इसका वास्तविक एवं वैज्ञानिक स्वरूप

लुप्त हो गया। योग और भक्ति को एक दूसरे का विरोधी समझने का भाव भी विकसित होने लगा था। कबीर दास जी ने बड़ी कुशलता से योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज डाल दिया। योग से प्राप्त ज्ञान, आत्म-शक्ति तथा आत्म-ज्योति को ईश्वरीय या परमात्म-ज्योति के 'में' निरूपित करके उसमें रसानुभूति तथा आनन्द की प्रतिष्ठा की। एक सिद्ध योगी की तरह कबीर योग की जटिल प्रक्रियाओं तथा प्रविधियों का स्वयं प्रयोग करते हैं। वे इस प्रयोग में इतने पारंगत तथा खरे हो गये हैं कि अपने समय के योगियों तथा अवधूतों को भी चुनौती देते हैं।

-नाद व्यंद की -गाव री, राम -गाम -गिहारी ।  
-है कबीर गुण गाइले, गुर गंगि उतरौं पार ॥

कबीर कहते हैं कि झूला प्रेम-भक्ति का है। यह सब संतों का विश्राम स्थल है। इडा और पिंगला के दो खंभे हैं और वक नाडी की डोर लगी हुई है। प्रेम में पाँचों इन्द्रियों झूल रही है। एक स्थल पर कबीर अपने मन को सम्बोधित करके कहते हैं कि योग की युक्ति, गुरु का शब्द और हरिभक्ति के बिना बार-बार दुःख ही मिलता है।

भक्ति का मूल भाव है प्रेम। ज्ञान और योग दोनों इसी ईश्वरीय प्रेम को ही पुष्ट करते हैं-कबीर हरि रस की पीकर सदैव गस्त रहते हैं। उन्हें शरीर की भी सुध-बुध नहीं रहती। जो मदमस्त अव्यक्त में लीन होता है वह कालजयी हो जाता है। वह जीवनमृत और विषयातीत होता है। वह जीवनमृत और विषयातीत होता है। इस प्रेम रस की पीने की इच्छा तो सभी करते हैं किन्तु सबको यह सुलभ नहीं हो पाता क्योंकि इसका वितरक कलाल इसके शुल्क के रूप में सिर मांगता है, जिससे इतने बड़े उत्सर्ग का संकल्प है वही इसका अधिकारी है। कबीर में इस भागवत रति को कई रूपों में अभिव्यक्त किया है।

दाम्पत्य प्रेम के अन्तर्गत राम को प्रियतम और आत्मा को प्रियतमा माना गया है। दोनों के संयोग और वियोग का मार्मिक चित्रण किया गया है।

**संयोग :-** राम भर्तार बनकर कबीर के दिल के मंदिर में आये हैं। वे सखियों को मंगलचार गाने के लिए आमंत्रित करते हैं और जन-जन से उस प्रियतम से अनुरक्त हो जाते हैं-

दुलह-नी गावहु मंगलचार ।  
हम घरि आए हो राजा राग भरतार ॥

बहुत दिनों के बाद प्रियतम के साथ गिलन सम्भव हुआ है। उनके आते ही मंदिर का सूनापन तथा अंधकार दूर हो गया। इसके लिए आत्मारूपी प्रिया ने कोई प्रयत्न नहीं किया। सारा सौभाग्य राम की कृपा से अपने आप मिल गया। अब दोनों एक शय्या पर शयन कर रहे हैं-

बहुत दिनन थै मैं प्रीतम पाये,  
मंदिर माहिं भया उजियास ।  
ले सूती अपना पीव पियारा ॥  
-है कबीर मैं -हु - -हि-हा ।  
स-गी सोहा-न राम मोहि दी-हा ॥

**वियोग :-** असीम परमात्मा से आत्मा बहुत दिनों से बिछुड गयी है। उसकी स्मृति उसे निरन्तर सताया करती है। स्वतः निर्मित बन्धनों में फँसकर आत्मा अपने परम प्रियतम को भूल गयी थी। सत्गुरु ने विरह का एक ऐसा बाँध मारा कि आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए तडप उठी। अन्य वियोगी तो समयानुसार अपने प्रिय से मिल जाते हैं किन्तु राम वियोगी रात-दिन अनन्त पीडा का अनुभव करता रहता है। विरहिणी प्रिय आगमन की प्रतीक्षा करती है। वह मार्ग से गुजरने वाले हर पथिक से प्रियतम का कुशल-संभ पूछती है। दर्शन की उत्कट लालसा में वह जैसे ही उठती है गश आकर गिर पडती है, सर्प के विष की तरह विरह उसके शरीर में लहरें मारता रहता है जिससे किसी तरह का मंत्र-तंत्र कामयाब नहीं होता। कबीरदास जी का कथन है कि राम वियोगी या तो जीता नहीं, जीता है तो पागल हो जाता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीर दास जी की भक्ति में

ज्ञान, योग और प्रेम का अद्भूत समन्वय है। तीनों एक दूसरे से इस तरह संघटित हैं कि इन्हें अलग-अलग विश्लेषित करना कठिन है।

### कबीर की योग साधना

कबीर की भक्ति-साधना ऐसे वातावरण में संपन्न हुई थी जिसमें योग के प्रभावों का चमत्कार सामान्य जनता को पर्याप्त आकर्षित कर रहा था। हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि “कबीर दास जी जिस वंश में उत्पन्न हुए थे उसमें योग चर्चा अत्यंत मामूली धर्म-चर्चा के समान थी। बाहर भी योगियों का बहुत जर्बदस्त प्रभाव था। इन योगियों की अद्भूत क्रियाएँ साधारण जनता के लिए आश्चर्य और श्रद्धा का विषय थी। परन्तु इन योगियों को किसी भी विषय में साधारण जनता से साम्य नहीं था। बल्कि ये लोग गर्वपूर्वक घोषणा करते फिरते थे कि वे तीन लोक से न्यारे हैं, सारी दुनियाँ भ्रम में उलटी बह जा रही है।” घर और बाहर के वातावरण से कबीर का अप्रभावित रह जाना असंभव है। जो व्यक्ति अनेक चुनौतियों से टकराने को ताल ठोककर खड़ा है उसके लिए तो और भी असंभव है कि सामान्य जनता की अपेक्षा करके उसके ओ से कोई ज्ञान का अहं लेकर चुपचाप गुजर जाय। कबीर ऐसे ही व्यक्ति हैं जो पहली बुझाने वाले या उल्टी धारा में चलने वाले योगी को कुछ और कठिन पहली में उलझा देते थे। उसे यह बता देना चाहते हैं कि तुम जिस ज्ञान पर इतरा रहे हो उसे खूब गहराई से समझ -

बुझकर गैने भक्ति योग की ओर प्रस्थान किया है। कबीर की योग साधना में क्रमिकता का निर्देश दिया गया है। डॉ गोविंद त्रिगुणायत कबीर को प्रयोगवादी योगी मानते हैं। कबीर का सारा जीवन सत्य के प्रयोग में बीता था। उनके ये सत्य के प्रयोग सभी क्षेत्रों में होते रहते थे। योग क्षेत्र में उनकी विशेष अधिकता रही। ऐसा प्रतीत होता है कि वे जीवन भी विविध प्रचलित योग पद्धतियों की परीक्षण और प्रयोग ही करते रहते थे। इन प्रयोगों से उन्हें सत्य का क्रमिक अनुभव होता जाता था। इसलिए उनकी योग साधना का विकास भी क्रमिक ही हुआ था। उनके योग संबंधी विचारों को स्थूल रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक वे जो उनके योग के सच्चे स्वरूप की खोज में किए गए परीक्षणों और प्रयोगों से संबन्धित हैं। और दूसरे वे जिनमें उनके योग के अंतिम स्वीकृत स्वरूप का वर्णन मिलता है। “वास्तव में कबीर की योग संबंधी उक्तियों में सम्बोधन परक भेद है अर्थात् जब वे योगी या अवधूत को सम्बोधित करते हैं तो सीधे ढंग से अपनी अनुभूति को योगिक अनुभूति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिस तरह से वे साम्प्रदायिक समन्वय के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। उसी तरह योग के विभिन्न रूपों के समन्वय के लिए भी सचेष्ट हैं। वे सभी साधनाओं से प्राप्त चरमानुभूति को भक्ति की भावानुभूति में समन्वित करके या एकान्वित करके प्रस्तुत करना चाहते हैं। उनको बार-बार ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मानुभूति की मानसिक दशा का निरूपण योगसाधना से प्राप्त समाधि या सहजावस्था के रूप में भी संभव है। सहजावस्था में पहुँच जाने के बाद फिर किसी तरह की साधना की आवश्यकता होती ही नहीं है। ठीक उसी तरह जैसे आत्मा और परमात्मा के अभेदत्व को या लेने के बाद साधना की आवश्यकता नहीं रहती। चरम अनुभूति की अभिव्यक्ति करते समय कबीर सभी प्रकार की योग साधनाओं का तिरस्कार करने लगते हैं। इससे आलोचकों ने यह अनुमान लगा लिया कि कबीर अपने पूर्व के योगिक प्रयोगों को नकार रहे हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि साधना की सिद्धावस्था में सारे विधि-विधान, स्वास-निरोध, नाडीशोधन मुद्रासाधना सब कुछ अनावश्यक प्रतीत होने लगते हैं। यह सब साधना की अवस्था का भेद है योग के विविध रूपों के प्रयोग, पत्पश्चात्, उनके स्वीकार या अस्वीकार का क्रमिक भेद नहीं है। पीछे उल्लेख किया जा चुका है कि कबीर दास जी ने भारत की समृद्ध परम्परा को सयत्न अर्जित किया था। वे उन सभी मान्यताओं के प्रति आकर्षित थे। जिनसे भाव साधना तथा जनकल्याण संभव था। वे उन सभी मान्यताओं के प्रति आकर्षित थे। जिनसे भाव साधना तथा जनकल्याण संभव था। योग की परंपरा भी इसी तरह की परम्परा थी जिसे प्रायः सभी धार्मिक सम्प्रदायों में आदर प्राप्त था। योग की व्यापक स्वीकृति के कारण इसके अर्थ और प्रयोग में भी वैविध्य आता गया। फलतः योग शब्द नाना अर्थों का वाचक हो गया। यज्ञवल्क्य के अनुसार संयोगों योग इत्यक्तो जीवात्मपरमात्मारिति जीवात्मा और परमात्मा के संयोग का नाम योग है। इसका प्रयोग मन तथा इन्द्रिय निग्रह के लिए भी होता है। इसे समाधि का पर्याय भी माना गया है। ईश्वर की सर्वोपरी शक्ति के लिए भी इसके पर्याप्त प्रयोग मिलते हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है इ

न व मत्स्थानि भूतानि पश्य में योग भैश्वरम् ।  
भूतभृत्र च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥

पंतजालि के अनुसार मानवी प्रकृति के भिन्न-भिन्न तत्वों के नियन्त्रण द्वारा पूर्णता प्राप्ति के लिए किया गया विविधपूर्वक प्रयत्न ही योग है। उपनिषदों के अनुसार योगाभ्यास यथार्थ सत्ता के सत्य ज्ञान की चेतना पूर्ण आन्तरिक खोज

है। कठोपनिषद् में योग की उच्चतम अवस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसमें इन्द्रियों को मन तथा बुद्धि के साथ सर्वथा शान्त भाव में लाया जाता है। तैत्तिरीय तथा मैत्रायणी उपनिषदों में भी योग का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में है।

छान्दोग्योपनिषद् में वर्णन है कि तब इस प्रकार क्रमशः उपसंहृत होकर मन के अपने मूलभूत पर देवता को प्राप्त होने पर उसमें स्थिर जीव भी सुषुप्तकाल के समान अपने निमित्त (मन) का उपसंहार हो जाने के कारण उपसंहृत होता हुआ यदि सत्यानुसंधान पूर्वक उपसंहृत होता है तो सत् को ही प्राप्त हो जाता है। सोने से जगो हुए पुरुष की तरह फिर देहान्तर को प्राप्त नहीं होता।

बुद्ध ने योग का अभ्यास कठोर तपस्या तथा उच्च कोटि के चिन्तन दोनों रूपों में किया। बौद्ध मत के अनुसार श्रद्धा, शक्ति, विचार, एकाग्रता तथा बुद्धि इन पाँच गुणों की धारणा योग के लक्ष्य को प्राप्त करा देती है। बौद्धमत की योगाचार शाखा बौद्ध सिद्धान्तों को योग से मिला देती है। महाभारत में धारणा और प्राणायामका उल्लेख मिलता है। उसमें कई स्थलों पर यह निर्देश भी है कि अनेक तपस्वियों ने चमत्कारी शक्तियों को प्राप्त करने के लिए योग-साधना का आश्रय लिया। जैन दर्शन में भी योग की स्वीकार किया गया है। पंतजलि ने अपने योग सूत्र में उस समय योगी विषयों जो चिन्तन तथा विचार (अस्पष्ट तथा अनिश्चित रूप में) विद्यमान थे उन सबका निचोड़ प्रस्तुत किया है।

१. यम
२. नियम
३. आसन
४. प्राणायाम
५. प्रत्याहार
६. धारणा
७. ध्यान
८. समाधि

१. **यम :-** ये नैतिक साधना से सम्बद्ध है। यम का अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, जितेन्द्रियता तथा अपरिग्रह सम्मिलित है। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है अहिंसा। सर्वथा और सर्वदा सभी जीवों से द्रोहहीनता (व्देषहीनता) ही अहिंसा है। इसमें क्षति पहुँचाने का अभाव ही नहीं बल्कि बैर का त्याग भी आवश्यक है। पाप से घृणा करते हुए भी पापी से भद्र व्यवहार की अपेक्षा भी इसमें निहित है। यम सार्वभौमिक धर्म है। क्योंकि इसमें जाति, देश, आयु और अवस्था का भेद बाधक नहीं होता।
२. **नियम :-** नियम के अन्तर्गत शुद्धि, सन्तोष तथा ईश्वर भक्ति आती है। ये ऐच्छिक होते हुए भी योगसाधना के लिए आवश्यक है। यम, नियम के निरन्तर अभ्यास से वैराग्य सुलभ हो जाता है। मनुष्य हर प्रकार की इच्छाओं से रहित हो जाता है।
३. **आसन :-** योग में मन का जितना महत्व है उतना ही शरीर का भी, ध्यान में बैठने से पूर्व साधक को एक सुविधाजनक स्थिति अर्थात् आसन में स्थित होना चाहिए। पंतजलि का कहना है कि आसन दृढ, सुखद और सरल होना चाहिए। शरीर रूपी यन्त्र की आसनों से पूर्णता तक पहुँचाया जा सकता है। जिससे थकावट, जरा और क्षय से बचा जा सकता है।
४. **प्राणायाम :-** यह श्वास-प्रश्वास संबंधी व्यायाम है। मन की अविशुद्धता या तो धार्मिक कार्यों के सम्पादन से प्राप्त होती है या ती प्राणायाम से प्राणायाम में मन प्रभाव की स्थिरता आती है तथा इससे अलौकिक शक्तियों को पैदा किया जा सकता है। पंतजलि का कथन है कि आसन के होते हुए श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम का हलाकत है। प्राणायाम तीन प्रकार का होता है।

- (I). बाह्यवृत्ति
- (ख). आभ्यन्तर वृत्ति
- (II). स्तम्भ वृत्ति

इन्हे क्रमशः रेचक पूरक और कुम्भक भी कहते हैं। बाह्यवृत्ति अर्थात् रेचक में श्वास को वाटर निकाल कर गति का अभाव किया जाता है। आभ्यन्तर अर्थात् पूरक में श्वास को अन्दर खींचकर गति का अभाव किया जाता है। स्तम्भ

वृत्ति अर्थात् कुम्भक में दोनों का अभाव होता है। जैसे तप्त उपले पर डाला हुआ जल एक साथ सूख जाता है उसी प्रकार श्वास-प्रश्वास दोनों की एक साथ गति का अभाव होता है। एक भिन्न प्रकार के प्राणायाम का वर्णन है जिनके नाम का निर्देश तो नहीं है किन्तु विधि का उल्लेख है। बाहर और भीतर के विषयों के त्याग से यह स्वतः घटित होता है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया कि प्राण का बाह्य विषय नासिका द्वारा के अन्त आदि तक अन्दर के विषय हृदय नाभिचकादि है। चतुर्विध प्राणायाम से ज्ञान के ऊपर जो आवरण रहता है वह नष्ट हो जाता है। इससे धारणा के लिए मन में योग्यता आ जाती है।

५. **प्रत्याहार :-** इन्द्रियों का अपने विषयों को त्याग करके चित्त स्वरूप के अनुकूल होना प्रत्याहार कहलाता है। चित्त को रोकने पर इन्द्रियों का कार्य व्यापार रुक जाता
६. **धारणा :-** नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्धाज्योति, नासिकाग्र, जिह्वग्र आदि शरीर के किसी भाग में अथवा किसी बाह्य विषय में चित्त की वृत्ति मात्र का रोकना 'धारणा' कहलाती है।
७. **ध्यान :-** उस देश ( अंग या स्थान ) विशेष जिसमें धारणा की गई है, ध्येय स्वरूप आलम्बन वाले ज्ञान की एकतानता, अन्य ज्ञानों से रहित सदृश प्रवाह ध्यान है। सदृश प्रवाह का तात्पर्य है जिसकी ध्येय विषयक पहली वृत्ति हो उस की दूसरी, तीसरी वृत्ति भी हो, ध्येय से अन्य का ज्ञान बीज में ही हो।
८. **समाधि :-** जब ध्यान में ध्येय मात्र भी भासित हो और चित्त या योगी का निज स्वरूप शून्य होने लगे तो समाधि की अवस्था आती है। ध्याता-ध्येय और ध्यान के भेदपूर्वक ध्यान होता है और दस भेद से रहित समाधि होती है। समाधि योगसाधना का लक्ष्य है इसीलिए योग को समाधि ही कहा गया है। यह आत्मा को काल संबंधी, सोपाधिक तथा परिवर्तनशील जीवन से ऊपर उठाकर एक सरल नित्य तथा पूर्ण जीवन प्राप्त करता है। समाधि की दो श्रेणियों मानि गयी है - संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात। संप्रज्ञात समाधि, चित्त की वह अवस्था है जिसमें चित्त एकाग्र होकर सत्पदार्थ को प्रकाशित करता है। कलेशों को नष्ट करता है तथा कर्म बंधनों को ढीला करता है, और मानसिक वृत्तियों के निरोध को प्रमुखता देता है। वितकनिगुत, आनन्दानुगत, अस्मितानुगत इसके चार सूक्ष्म भेद हैं। भोजदेव ने इन्हें क्रमशः सवितर्क, सविचार, सानन्द, आस्मित कहा है। "शब्दों, परिणामों, आत्मा के संबंधों तथा अन्तःकरण पर जब हम सूक्ष्म विचार करते हैं तो उसे सविचार समाधि कहते हैं। आनन्द सहित को सानन्द कहते हैं और अपने चिन्मात्र स्वरूप को जानना अस्मिता कहलाती है। असंप्रज्ञात समाधि ऐसी अवस्था है जिसमें कोई चित्तवृत्ति उपस्थित नहीं रहती यद्यपि पूर्व संस्कार शेष रहते हैं।

समाधि की ऐसी अवस्था जिसमें भावी जीवनर्क बीज मौजूद रहते हैं को राजीव समाधि कहते हैं, और जिसमें इनकी उपस्थिति नहीं होती उसे निर्बीज समाधि कहते हैं। वाचस्पति के विचार से बीज कर्म का प्रसुप्त आशय है जो जन्म जीवन की अवधि तथा सुखों के नाना रूपों की बाधाओं के अनुरूप है। यह जिसका आधार है वह सजीव है और जो इस आधार से रहित है वह निर्बीज है। व्यास का कथन है कि सत्व, रस और तम चित्त के तीन पार्श्व हैं। इसका सात्विक पार्श्व प्रकाशमय है किन्तु जब यह रजसू और तमस से संयुक्त रहता है तो ऐन्द्रिय विषयों की कामना करता है विशुद्ध तम से आच्छादित होने पर बुराई, अज्ञान और आसक्ति की ओर प्रवृत्त होता है। सात्विक अवस्था में चित्त अपने आप में व्यवस्थित हो जाता है। यद्यपि यह उच्चतम ज्ञान है तो संभव हो सकता है किन्तु इसका भी दमन करना आवश्यक है। सभी संस्कारों के दमन हो जाने के बाद ही निर्बीज समाधि प्राप्त होती है। समाधि की उन्नत अवस्था में द्रव्य अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है। इस अवस्था में आत्मा तथा चित्त की किये के मिश्रण की सारी संभावना समाप्त हो जाती है।

### सन्दर्भ संकेत

१. बीर ग्रंथावली (सटीक)  
रामाशोर शर्मा ( हिन्दी विभाग इलाहाबाद )  
विश्वविद्यालय  
लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद  
पृष्ठ संख्या : ४०, ४१, ४२, ४३, ४४
२. बीर ग्रंथावली ( सटीक )  
लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद  
पृष्ठ संख्या : १४, १४, ५१४, ५१५, ६१२